आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 2/अंक 1/मार्च 2022
Received: 24/02/2022; Published: 24/03/2022

कहानी

श्रद्धांजलि

प्रो. प्रतिभा मुदलियार
ई मेल – mudliar_pratibha@yahoo.co.in

प्रो. प्रतिभा मुदलियार, **श्रद्धांजलि** ,आखर हिंदी पत्रिका, खंड 2/अंक 1/मार्च 2022,(65-69)

रात के आठ बजे फोन बज उठा है और अनायास दिल धक् कर जाता है। हाथ में थामी पुस्तक संभलते गिर जाती है। कुछ क्षण फोन की रिंग साहस के साथ सुनती हूँ और क्षण भर बाद कांपते हाथों से रिसीवर उठाती हूँ। हलक से शब्द ही नहीं निकलते। पता नहीं पर रात भी कैसी भयावह लग रही है। दूसरे छोर से जब दो तीन बार 'हलो, हलो' कहा जाता है तब जाकर कहीं मुंह से 'येस' निकलता है।

'आप अमृता जी बोल रहीं हैं?'

'हां....'

'एक बुरी खबर है....'

.....सुनते ही मेरे दिल की धड़कन बढ़ती तो नहीं, लेकिन मैं अपने चेहरे पर एक कसाव सा महसूस करती हूं।

'हलो, हलो आप सुन रहीं हैं ना?'

'हां, जी....'

'जी, उम्मेश जी नहीं रहे। आज शाम छह बजे करीब.....'

.....और मेरे हाथ से चोगा छूट गया.....पता नहीं कैसे पर मैं कुर्सी पर बैठ ही गयी थी

.....इतना भर याद रहा।....फिर एक लंबी ख़ामोशी मेरे भीतर घिरती गई थी। एक पर्व समाप्त हुआ था। यह आशियाना और उसके भीतर बनी समाधि पर फूल चढ़ाती मैं, मेरा इतिहास, मेरा प्रेम अब भूतकाल में विलीन हो गया था। एक खामोश प्यार ख़तम हुआ। हमेशा के लिए। अब न फूल बीनने की आवश्यकता है न सजाने की जरुरत।

.....मैं अपने अतीत में खोई शायद कुछ सवालों से घिरी थी। मीता मुझे झिंझोड़कर पुकार रही थी और कहीं से बच्चे के रोने की आवाज सुनाई दे रही थी। जब पुनः वर्तमान का सामना हुआ तो आंखों से आंसुओं की बाढ़ ही शुरू हुई। मेरी हिचकियों और सिसकियों से शायद मीता घबरा उठी, लेकिन तब भी कहीं उसमें गांभीर्य था, इसलिए अपनी ही माँ को वह समझा रही थी,

'माँ पिताजी से तुमने दिल, दिमाग और देह से रिश्ता तोड़ दिया है फिर उनकी मृत्यु पर ये आंसू? जिनको अपनी ठकुराई ही भाई, उस आदमी के लिए आंसू? उस आदमी के लिए जिसे हमारा प्यार तक पिघला न सका, जो हमें इस तरह भुला सकता है, उसके लिए आंसू? माँ अपराधी की मृत्यु पर आंसू नहीं बहाए जाते, पोंछ लो ये अपनी कमजोरी आँखों से और...

मीता बहुत कुछ कह रही थी....कहती जा रही थी। पर उसे भी कहीं ठेस पहुंच गई थी। लेकिन उसकी आंखों का बांध मजबूत था।

फोन बार-बार बज रहा था, अब उसे लगातार बजना ही था। मुझे वही खबर बार-बार सुननी नहीं थी, इसलिए चोगा उठाकर एक ओर रख दिया। अतीत पर पड़ा पर्दा अब उठाना नहीं था, लेकिन स्मृतियां काले घने बादलों को चीरकर वर्तमान के क्षितिज पर मंडराने लगती ही हैं।

....मुझे अपनी सूनी आंखों से नजर आ रहा था वह घर, वह दहलीज, वह चौखट, वह नीम, वह सब जिसे मैंने बहुत करीब से देखा था, भोगा था, जिया था और छोड़ा भी था। अब उन सबसे जोड़ा एक भावुक रिश्ता भी टूट गया था। यूं व्यक्ति के ख़तम होते ही सबकुछ ख़तम हो जाता है? मैंने तो अठारह साल बिताए थे उनके साथ, अपना सारा प्रेम उन पर लुटा दिया था, फिर ऐसा क्या था जो हम अलग हुए थे.... यही कहकर कि 'अब निभना-निभाना असंभव है? लेकिन कानून से तोड़े जाने पर भी भावनाओं को तोड़ा नहीं जाता न? पर अब भावना भी किसके पास जायें? किसे मिले? किससे अपना गम बयान करें? मेरे अन्दर सवाल उठ रहे थे.... और मैं रोये जा रही थी। क्यों? इतना सबकुछ घटित होने पर भी यह कैसी भावना? रिश्ते टूट गए या तोड़े जाने पर भी बवाना नहीं मरती। यह सच है.... लेकिन तब ही जब व्यक्ति के जीवन की परछाई को भी अपने जीवन का आदर्श माना होता है। मैंने क्या किया? यही तो किया था – फिर यह दूर रहना-अलग होना-तलाक...कितना कुछ !

परित्यक्ता का यह दुःख भी होता है – मुझे मालूम नहीं था। जिसे मन से वरा था – उससे परित्यक्त होकर भी न रिश्ता टूटा, न भावना मर गई और ना ही प्रेम ख़तम हुआ। यह कौन समझ पायेगा? मीता? या उन्मेश? या यह सुदूर तक फैला समाज? उनका इस संसार से हमेशा के लिए चले जाना और पीछे स्मृतियों का बवंडर ही शेष रह जाना – कितना बड़ा सत्य रह जाता है आंखों के सामने! हम अलग हुए थे अपनी मजबूरियों,

अपने तत्व और जीवन दर्शन के लिए। हमारे प्यार में कहीं कोई खोट नहीं था.... इसलिए भूलना भी मुश्किल था। इसी कारण मेरी कविता फिर फूटने को हुई थी, इसलिए मैं लिखती भी गई थी, रोती भी गई थी और प्रार्थना भी करती रही – उसके लिए जिसने मुझे कानून से तोड़ा था। पर उन्मेश सवाल मेरा तुम्हीं से है - 'क्या तुम दूर जा सके थे मुझ से? तोड़ पाये थे वे पाश जो हमारे प्रेम से बने थे?' लेकिन लगता है शायद तोड़ ही दिये थे तुमने वह सारे पाश और बिलकुल तटस्थ हो गए थे और अब तो इतने दूर चले गए हो कि मेरी फ़रियाद क्या कुछ भी सुन नहीं सकते।...

तुम तो चले गए, पर भावना और स्मृतियों का संघर्ष एक बार फिर छिड़ गया है भीतर! तुम्हारे अंतिम दर्शन लेने हैं। लेकिन अब उस घर में किस रिश्ते से जाऊं? पत्नी के, प्रिया के या परित्यक्ता के? या लेखिका के, फैन के या दर्शक के? किस रिश्ते से-बता सकते हो? घर की दहलीज से लेकर दरो दीवारों तक मुझे सवाल करेंगी और उन सवालों का मेरे पास कोई उत्तर नहीं होगा। फिर उनकी आंखों में भी तो खड़े रहेंगे सवाल.... जिन्होंने हमारे बीच की दूरियों को बढ़ाने में सहायता पहुंचाकर, हमारे भाल पर लिख दी थी इस तरह की एकान्त यात्रा....एक-दूसरे को समर्पित-शापित एकान्त यात्रा। एक कशमकश भी है - एक हिचकी भी है। भाल पर लगाए इस रक्तरंजित टीके के साथ आऊं या मिटाकर? मुझे पता है सबकी नज़रें मेरे भाल की ओर उठेंगी। एक मूक सवाल रहेगा उनकी आंखों में.... और उन्मेश तुम समझ सकते हो मेरी स्थिति क्या होगी? इसलिए लो - मैं ही मिटा देती हूं .... इतने सालों तक लगाया रक्तरंजित टीका - मोह का, प्रेम का, प्रिय का और संस्कृति का भी। अब यह सफ़ेद भाल और सूनी मांग....और उससे जुड़ी अनेक स्मृतियां...

वह दिन मैं कैसे भूल सकती हूं, जब फूलों से लदे तुम मंच पर बैठे थे। लोग कितनी आत्मीयता से तुम्हें सुन रहे थे। उनकी वेदना ही तो तुम्हारे शब्दों से फूट पड़ रही थी.... और तुम्हारे ही शब्दों से उनकी वेदना को मरहम मिल रहा था, 'समझौता जीवन का वह अंग है जिसे काटकर फेंका नहीं जाता। पर हम बार अपने 'अहं' की रक्षा के लिए उसे काट फेंकते हैं। और इस तरह लूले-लंगड़े हो जाते हैं कि जीने का असंतुलन ही खो जाता है। पर अपना अहं....।'

और वह दिन.... सुबह का समय था। अभी-अभी नहाकर तुम हवेली के अहाते में बैठे थे। माली काम में लगा था और मैं उसके साथ एक कैक्टस का पौधा लगा रही थी। गेट के पास एक अदना सा आदमी खड़ा था। मैंने माली को कहा देख लो। माली अपने मैले हाथों से ही उस तक पंहुचा। पूछा,

'क्या है बाबा?'

'जी, उन्मेश जी यहीं रहते हैं?'

'जी हां, पर तुम....।' माली ने उसकी ओर देखते हुए पूछा।

'जी मैं उनसे मिलना चाहता हूं।'

'क्यों?'

'वो, वो....।'

अबतक तुमने भी उत्सुकतावश बाहर देखा और माली को वहीं से कहा भेज दो उसे अन्दर। वह व्यक्ति डरा सहमा अन्दर आया। उसने आंख भर तुम्हें देख लिया। फिर तुमने ही पूछा था, 'बाबा, तुम क्यों आये हो?'

'जी, मैंने आपकी एक कहानी पढ़ी और अपनी भूल को समझ गया, आपकी कहानी से मेरा जीवन बदल गया है, मैं यहां सिर्फ आपको देखने आया हूं और अब एक मोह को छोड़ नहीं सकता.....'

'क्या?'

'मुझे अपने पांव छूने दीजिए बस।'

और वह आपके पैरों पर झुका ही था कि अपने उसे अपने गले से लगा लिया था।

मैं वहीं खड़ी तुम दोनों बाहों में बंधे देख रही थी। माली की आंखों में सारी दुनिया का आश्चर्य सिमट आया था।

.....और तुमने उसे अपनी लिखी सारी पुस्तकें भेंट की....।

वह दृश्य जब कभी आंखों के सामने घूम जाता है तो आंखें अपने आप भर आती हैं....

उस समय एक प्रश्न खड़ा रहता, तुम ही हो वह 'ठाकुर' उन्मेश?

उन्मेश तुम आदमी और कलाकार की दृष्टि से बहुत महान व्यक्ति थे। एक ऐसी ऊंचाई पर खड़े थे कि तुम्हें छूना भी मुश्किल था। लेकिन तुम्हारे अन्दर वास करने वाला एक अन्य रूप भी था तुम्हारा.... एक ठाकुर का, एक अधिकार जताने वाले पुरुष का और शायद इन्हीं संस्कारों में पलने वाले एक दंडाधिकारी का भी। तुम्हारे कलाकार को मैं भा गई थी - और इसी कारण हम परिणीत हुए थे। मैं भी तुम्हारे कलाकार पर ही तो मोहित हुई थी। जिसने संसार को प्रेम करना सिखाया, जीना सिखाया, मनुष्यता का आदर्श शब्दों से अवतरित किया और इसी माध्यम से जीवन का इंद्रधनुष्य चित्रित किया था। जिस रूप पर मोहित होकर मैं आई थी वह रूप कहां खो जाता मेरी समझ में नहीं आता। तुम अपने व्यक्तित्व में इस तरह खंडित थे कि मेरे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रहती। मैंने हमेशा तुम्हारे कलाकार को पाना चाहा। क्या यह मेरी भूल थी? कि जिसका उत्तर केवल यही था - तलाक! तुम्हारे अन्दर का ठाकुर कलाकार पर इस तरह हावी हो जाता कि तुम मुझे अपनी चेरी से ज्यादा समझते नहीं। तुम्हारे लिए मैं केवल दो रूपों में ही मान्य थी - एक 'दासी' और दूसरा 'शो पीस'! उस समय तुम्हें अपने शब्दों का होश नहीं रहता.... उस वक़्त तुम केवल और केवल ठाकुर 'उन्मेश' रहते। इसीलिए 'तलाक' तुम्हारे लिए एक सामान्य घटना रही होगी। पर मेरे लिए धधकता इतिहास बन गया है, जिसे कोई

मिटा नहीं सकता। तुम्हारे 'ठाकुर' को मेरे आंसू भी गवारा नहीं थे। तब मेरा कवि मन तड़पता। उस समय कलम और कागज़ ही मेरा शेष सहारा होते। जब तुम कलाकार होते तब आकाश भी बाहों में आ जाता। संसार की सारी खुशियां मेरे आंगन में भीड़ करने लगतीं। उस समय दो कलाप्रेमी इस तरह एक हो जाते जैसे कभी बिछड़े ही ना हो। प्यार और नफरत किस तरह एक हो गए थे - तुम्हारे भीतर ! तुम्हारा प्यार जितनी शिद्दत से मैंने जतन किया है उतनी नफरत भी मेरे अन्दर प्रतिशोध सी थथक उठती है।

.....पर अब तो तुम सभी संज्ञा, भावना आदि से कितने दूर चले गए हो। क्या करोगे मेरी भावना, या प्रतिशोध को सुनकर या देखकर भी! उन्मेश मैं यही कहना चाहूंगी कि तुम्हारे कलाकार से जितना प्रेम मैंने किया उतनी तुम्हारे दूसरे रूप से पीड़ित हुई हूं। लेकिन प्यार हार ही गया था.....तुम्हारे ठाकुर के सामने। और तोड़ दिया गया था उन धागों को जो बहुत दृढ़ होने का विश्वास दोनों ने जतन किया था। कभी सोचती हूं 'प्रेम' कहीं कोई सचमुच ही काल्पनिक भावना तो नहीं कि जिसके होने का भ्रम हम पालते रहते हैं और सच्चाई में इस तरह अलग होते हैं। नहीं, यूं तो मैं अलग ही कहां हुई हूं? तुम भी? मुझे विश्वास है तुम्हारा कलाकार जब भी सजग हुआ होगा मेरी याद से तड़पा होगा, रोया होगा वह अपनी भूल पर..... और मेरे साथ लगाए गत एक नए शब्द पर भी परित्यक्ता।....

पर अब सब कुछ समाप्त हो गया है - बचा है केवल भूतकाल..... मैं और मेरा भूतकाल। मैंने अपनी स्मृतियों से 'ठाकुर' को पूरी तरह से निकाल दिया है - बुझा दी है वह सब यादें जिसने मुझे त्रिया से परित्यक्ता बना दिया। अब तो बस वर्तमान में सांस लेकर 'भूतकाल' जतन करना है, इसलिए वर्तमान को दहलीज पर पड़े तुम्हारे शव के दर्शन भी उचित नहीं समझती। तुम जो मेरे अन्दर बसे हो, रमे हो, मैंने उसे हमेशा जीवित देखा है अपने में और लोगों में भी। तुम चाहे जो भी रहे हो, मैंने तुम्हारे द्वारा खड़े किए पात्रों को जीवित ही देखा है। तुमने जो प्रेम, स्नेह, श्रद्धा, मैत्री और मनुष्यता का संस्कार अपने साहित्य से दिया है - उसे इतनी सहजता से भुलाया नहीं जा सकता ! इसलिए इस क्षण यह आंसुओं की श्रद्धांजलि.... संभव है यह अश्रु सिक्त श्रद्धांजलि मेरी अंजुली से यूं ही झरती रहेगी.....और आंखें कलाकार को पूजती रहेंगी.....

अब कहीं भावोद्रेक नहीं है....

सामान्य हूं मैं....

अपनी इस कुटिया में.....

तुम्हारी स्मृति....और.....

मेरे वर्तमान के साथ एक नया मार्गक्रमण

एक स्मृति – साधना....।

****